International Journal of Engineering Research & Management Technology
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) ISSN: 2348-4039
Volume 11, Issue-3 May-June- 2024 Impact Factor: 7.09
Email: editor@ijermt.org www.ijermt.org

प्राचीन भारत में शिक्षण संस्थाएँ एक समीक्षात्मक अध्ययन

Vinita Singh
Research Scholar, Department of ancient history, culture and archeology
Nehru Gram Bharti (deemed to be university) jamunipur, kotwa, Prayagraj

Dr Mohd Wakuif
Research supervisor, Assistant professor Head of Department Ancient History
culture and archeology Nehru Gram Bharti (deemed to be university)
Jamunipur, kotwa, Prayagraj UP

सार

प्रारम्भ में जब जीवन की आवश्यकताएँ एवं ज्ञान का क्षेत्र सीमित था, तब परिवार में ही सभी प्रकार की शिक्षा का कार्य सम्पन्न होता था, किन्तु बाद में इसे अपर्याप्त अनुभव किया गया और अन्य प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं का जन्म एवं विकास हुआ। शैक्षिक संस्थाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। प्राचीन भारत में शैक्षिक संस्थाओं में किन किन सुविधाओं की आवश्यकता होती थी और उनके प्रबन्ध के लिए वित्त की व्यवस्था कैसे होती थी, यह जानना वर्तमान में इसे समुन्नत बनाने की दृष्टि से आवश्यक है। आश्रमों का सम्पूर्ण प्रबन्धन गुरु द्वारा किया जाता था जिसमें शिष्य लोग उसकी सहायता करते थे। कालान्तर में बौद्ध धर्म के उदय के बाद बौद्ध विहार प्रमुख शिक्षण संस्थान बन गये। इन विहारों में रहते हुए छात्र शिक्षा प्राप्त किया करते थे। विहार भी गुरुकुल के समान ही पूर्णतः आवासीय थे तथा यहाँ पर भी छात्रों को निःशुल्क शुक्षा प्रदान की जाती थी।

मुख्य शब्दः बौद्ध धर्म, वैदिक काल, मौर्य काल , शिक्षा

परिचय

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति में हमें अनौपचारिक तथा औपचारिक दोनों प्रकार के शैक्षणिक केन्द्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। औपचारिक शिक्षा मन्दिर, आश्रमों और गुरुकुलों के माध्यम से दी जाती थी। ये ही उच्च शिक्षा के केन्द्र भी थे जबकि परिवार, पुरोहित, पण्डित, सन्यासी और त्यौहार प्रसंग आदि के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त होती थी। विभिन्न धर्मसूत्रों में इस बात का उल्लेख है कि माता ही बच्चे की श्रेष्ठ गुरु है। कुछ विद्वानों ने पिता को बच्चे के शिक्षक के रुप में स्वीकार किया है जैसे-जैसे सामाजिक विकास हुआ वैसे-वैसे शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित होने लगी। वैदिक काल में परिषद, शाखा और चरण जैसे संघों का स्थापन हो गया था, लेकिन व्यवस्थित शिक्षण संस्थाएँ सार्वजनिक स्तर पर बौद्धों द्वारा प्रारम्भ की गई थी।

गुरुकुलों की स्थापना प्रायः वनों, उपवनों तथा ग्रामों या नगरों में की जाती थी। वनों में गुरुकुल बहुत कम होते थे। अधिकतर दार्शनिक आचार्य निर्जन वनों में निवास, अध्ययन तथा चिन्तन पसन्द करते थे। वाल्मीकि, सन्दीपनि, कण्व आदि ऋषियों के आश्रम वनों में ही स्थित थे और इनके यहाँ दर्शन शास्त्रों के साथ-साथ व्याकरण, ज्योतिष तथा नागरिक शास्त्र भी

पढ़ाये जाते थे। अधिकांश गुरुकुल गांवों या नगरों के समीप किसी वाग अथवा वाटिला में बनाये जाते थे। जिससे उन्हें एकान्त एवं पवित्र वातावरण प्राप्त हो सके। इससे दो लाभ थे; एक तो गृहस्थ आचार्यों को सामग्री एकत्रित करने में सुविधा थी, दूसरे ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन में अधिक भटकना नहीं पड़ता था। मनु के अनुसार `ब्रह्मचारों को गुरु के कुल में, अपनी जाति वालों में तथा कुल बान्धवों के यहाँ से भिक्षा याचना नहीं करनी चाहिए, यदि भिक्षा योग्य दूसरा घर नहीं मिले, तो पूर्व-पूर्व गृहों का त्याग करके भिक्षा याचना करनी चाहिये।

इससे स्पष्ट होता है कि गुरुकुल गांवों के सन्निकट ही होते थे। स्वजातियों से भिक्षा याचना करने में उनके पक्षपात तथा ब्रह्मचारी के गृह की ओर आकर्षण का भय भी रहता था अतएव स्वजातियों से भिक्षा-याचना का पूर्ण निषेध कर दिया गया था। बहुधा राजा तथा सामन्तों का प्रोत्साहन पाकर विद्वान् पण्डित उनकी सभाओं की ओर आकर्षित होते थे और अधिकतर उनकी राजधानी में ही बस जाते थे, जिससे वे नगर शिक्षा के केन्द्र बन जाते थे। इनमें तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, मिथिला, धारा, तंजोर आदि प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार तीर्थ स्थानों की ओर भी विद्वान् आकृष्ट होते थे। फलत: काशी, कर्नाटक, नासिक आदि शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये।

उद्देश्य

1. प्राचीन भारत में वैदिक काल में शिक्षण संस्थान का अध्ययन करना

2. भारत में मौर्य काल की शिक्षा पद्धति का अध्ययन करना

नारियों के लिये पाठशालाएँ

वेदों में उल्लिखित कुछ मन्त्र इस बात को रेखांकित करते है कि कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण मानी जाती थी। स्त्रियों को लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थी। सहशिक्षा को बुरा नहीं समझा जाता था। गोभिल गृहसूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती थी। संगीत शिक्षा पर जोर दिया जाता था।

इच्छा और योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के लिए श्रमणक्रमणिका में उल्लिखित प्राचीन परम्परा के अनुसार ऋग्वेद की रचना में २०0 स्त्रियों का योगदान है। शकुन्तला राव शास्त्री ने इसे तीन कोटि में विभाजित किया है। (१) महिला ऋषि द्वारा लिखे गये श्लोक, (२) आंशिक रूप से महिला ऋषि द्वारा लिखे गये श्लोक एवं (३) महिला ऋषिकाओं को समर्पित श्लोक। ऋग्वेद के दशम मंडल के ३९ एवं ४० सूक्त की ऋषिका घोषा, रोमशा, विश्ववारा, इन्द्राणी, शची और अपाला थी।

छात्रावासों का प्रबन्ध

प्राचीन भारत में गुरु के प्रत्यक्ष निरीक्षण में रहकर विद्योपार्जन श्रेष्ठ माना जाता था। अतएव अधिकांश विद्यार्थी गुरु कुलों में ही रहते थे। गुरु जन अपने घर पर ही विद्यार्थी के आवास-निवास की व्यवस्था करते थे। भोजन का कार्य भिक्षा वृत्ति द्वारा चलता था अथवा अध्यापक के गृह में भी व्यवस्था हो जाती थीं। उस समय एक गुरु के पास एक साथ प्राय: पन्द्रह से अधिक विद्यार्थी नहीं पढ़ते थे। कभी-कभी तो केवल चार विद्यार्थी ही एक गुरु के अधीन अध्ययन करते थे। अतएव उनके भोजन व निवास की व्यवस्था करना गुरु के लिए कोई कठिन कार्य नहीं होता था। किन्तु गुरु के विद्यार्थियों का प्रबन्ध करने में असमर्थ होने पर विद्यार्थी अपने रहने का प्रबन्ध स्वयं करते थे।

अध्यापन कार्य में विद्यार्थी से धन मांगना अध्यापक के लिए अत्यन्त निन्दनीय माना जाता था। गुरु निर्धन से निर्धन विद्यार्थी को भी पढ़ाने से मना नहीं कर सकता था। जो गुरु विद्या के लिए मोल-भाव करता था उसको विद्या का व्यवसायी कह कर हेय समझा जाता था। ऐसे अध्यापकों को धार्मिक अवसरों पर ऋत्विक के कार्य के अयोग्य कहा गया। किन्तु गुरु के पढ़ाये हुए एक ही अक्षर द्वारा शिष्य उसका ऋणी समझा जाता था। अतएव समावर्तन के अवसर पर शिष्य गुरु-दक्षिणा के रूप में सामर्थ्यानुसार गुरु को धन देते थे। जो अत्यन्त निर्धन होते थे वे गुरु की गृहस्थी में सेवा-कार्य करके तथा समावर्तन के समय भिक्षा मांग कर गुरु दक्षिणा देते थे। वस्तुत: राजा और प्रजा दोनों का कर्त्तव्य था कि वे विद्वान आचार्यों एवं शिक्षण संस्थाओं को मुक्त हस्त दान दें।

सह-शिक्षा एवं पृथक् शिक्षा विवेचन

प्रागैतिहासिक काल में साहित्यिक तथा व्यावसायिक हर प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था परिवार में ही होती थी। ऐसी अवस्था में सम्भवत: सगे भाई-बहन तथा चचेरे भाई-बहन सम्मिलित होकर ही परिवार के शिक्षित अग्रजनों के संरक्षण में विद्योपार्जन करते रहे होगे। किन्तु धीरे-धीरे विद्या के भण्डार में प्रचुर वृद्धि हो जाने से विशेषाध्ययन की ओर लोगों की रुचि बढ़ने लगी। अतएव विद्यार्थियों के लिए परिवार से दूरस्थ स्थानों पर जाकर प्रतिष्ठित विद्वानों के संरक्षण में वांछित विषयों का अध्ययन करना आवश्यक हो गया। प्राय: कन्याओं को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर के बाहर विद्वान् आचार्यों के पास जाना पड़ता था। किन्तु इस सम्बन्ध में हमारे ग्रन्थों से बहुत कम संकेत प्राप्त होते हैं।

उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश के साथ पढ़ने वाली आत्रेयी नामक स्त्री का उल्लेख हुआ है। जो इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि उस युग में सह-शिक्षा का प्रचार था। इसी प्रकार `मालती-माधव' में भी भवभूति ने भूरिवसु एवं देवराट के साथ कामन्दकी नामक स्त्री के एक ही पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने का वर्णन किया है। भवभूति आठवी शताब्दी के कवि हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि यदि भवभूति के समय में नहीं तो उनसे कुछ समय पूर्व तक बालक-बालिकाओं की सह-शिक्षा का प्रचलन अवश्य रहा होगा। इसी प्रकार पुराणों में कहोद और सुजाता, रूहु और प्रमदवरा की कथाएं वर्णित हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कन्याएं बालकों के साथ-साथ पाठशालाओं में पढ़ती थीं तथा उनका विवाह युवती हो जाने पर होता था। परिणामत: कभी-कभी गान्धर्व विवाह भी हो जाते थे। ये समस्त प्रमाण इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि उस युग में स्त्रियाँ बिना पर्दे के पुरुषों के बीच रह कर ज्ञान की प्राप्ति कर सकती थीं। उस युग में सहशिक्षा-प्रणाली का अस्तित्व भी इनसे सिद्ध होता है। गुरुकुलों में सहशिक्षा का प्रचार था, इस धारणा का समर्थन आश्वलायन गृह ससूत्र में वर् णित समावर्तन संस्कार की विधि से भी मिलता है। इस विधि में स्नातक के अनुलेपन क्रिया के वर्णन में बालक एवं बालिका का समार्वतन संस्कार साथ-साथ सम्पन्न होना पाया जाता है। उस युग में स्त्री के ब्रह्मचर्याश्रम, वेदाध्ययन तथा समावर्तन संस्कार का औचित्य आश्वलायन के मतानुसार प्रमाणित हो जाता है।

शिक्षा के विषय

प्राचीन भारतीय शिक्षा का इतिहास सहस्रों वर्षों की लम्बी अवधि में लिखा गया है। अत: यह अत्यन्त विशाल है। स्मृतियाँ संस्कृत साहित्य में परिवर्तनशील एक विशिष्ट काल की ओर संकेत करती हैं। उनके माध्यम से वैदिक काल से लेकर उनके अपने समय तक की समस्त साहित्यिक रचनाओं की श्रृंखला का पूर्वाभास कराया गया है। अतएव स्मृतिकालीन विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों एवं सूत्रों के काल की समस्त मुख्य रचनाएँ थीं।

ईसा पूर्व पन्द्रह सौ शताब्दी तक अधिकांश वैदिक मन्त्रों के सम्पादन का कार्य पूर्ण हो चुका था। तत्पश्चात् वेदों के अर्थ-बोध के लिए जिन टीकात्मक एवं चर्चात्मक ग्रन्थों का विकास हुआ वे `ब्राह्मण' ग्रन्थों के नाम से प्रतिष्ठित हुए। इस काल के विद्वानों की प्रतिभा का उपयोग वेदों के स्वरूप की रक्षा एवं अर्थों के स्पष्टी-करण में किया गया, न कि नवीन साहित्यिक-रचनाओं के निरुपण में। फलत: वैदिक यज्ञों से सम्बनध अनेक सिद्धान्तों, मतवादों और रीतियों का विवेचन `ब्राह्मणों' में होने लगा। विद्वानों ने विशेष रूप से अपनी साधना का केन्द्र यज्ञों के कर्मकाण्ड को बनाया। परिणाम स्वरूप कर्मकाण्डों में जटिलता एवं दुरूहता आ गयी। दूसरी ओर वेदों की दार्शनिक प्रवृत्ति का विकास हुआ और उसने `उपनिषदों' के रूप में पूर्णता प्राप्त की।

वैदिक काल में शिक्षण संस्थान

उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा की अवधि सामान्यतया 1400 ई०पू० से 600 ई०पू० तक मानी जाती है। उत्तर वैदिक कालीन को ऋग्वैदिक काल के अन्त तथा बौद्ध धर्म के आरम्भ- काल के समय को माना गया है। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य वही था जो ऋग्वैदिक काल में था पर साधन प्रक्रिया में कुछ अंतर पाया गया है। शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जहाँ ऋग्वैदिक काल में तप तथा यज्ञ साधनों को उपयोग में लाते थे वही उत्तर वैदिक काल में तप का स्थान वाह्य विधानों से परिपूर्ण यज्ञों ने ले लिया। इन यज्ञों के सम्पादन का उत्तरदायित्व पुरोहितों के हाथ में था। तत्कालीन समाज में पुरोहित का पद गौरवपूर्ण तथा प्रतिष्ठित था। इस काल के शिक्षार्थी पद्यात्मक ऋग्वेद का अध्ययन करते थे । शिक्षार्थी की सुविधा के लिए सामवेद को जिसमें कुल मन्त्र 75 ही है और शेष मन्त्र अन्य तीनों वेदों से लिए गए है को पूर्वाचिक एवं उत्तरार्चिक इन दो रूपों विभक्त किया गया है। ब्राह्मण छात्रों के लिए अथर्ववेदों के ज्ञान के साथ ही साथ अन्य वेदों का ज्ञान अपेक्षित था। जिससे यज्ञिक क्रियाओं का सम्पूर्ण निरीक्षण किया जा सके। फलतः छात्रों का रूझान भी बदल गया छात्रों की चिन्तन धारा समाप्त हो गयी और विद्यार्थियों का ध्यान याज्ञिक स्थूल में ही केन्द्रित हो गया। इसी यज्ञ सम्बन्धी उपकरणों के लिए निर्धारण के अनेक भौतिक विज्ञानों तथा हस्त कलाओं क्रिया- कलापों का प्रादुर्भाव हुआ, ज्यामिति, ज्योतिष तथा गणित, भौतिक विज्ञान तथा शरीर क्रिया विज्ञान का आविर्भाव भी इसी समय हुआ ।

बौद्धकाल में शिक्षण संस्थान

वैदिक धर्म के अन्तर्गत हिन्दू धर्म में अनेक दोष आ गए थे। इन्ही दोषों के निराकरण के रूप में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। कर्मआधारित व्यवस्था परिवर्तित होकर जन्म आधारित व्यवस्था भारत में अग्रसर होने लगी। भारतीय शिक्षा पर ब्राह्मण वर्ग का एकाधिकार हो गया था शूद्र वर्ग पूर्ण रूप से वंचित हो गया। ई० पू० 563 में भारत की भूमि पर महात्मा बुद्ध का अवतरण हुआ। महात्मा बुद्ध ने वैदिक काल के कठोर वर्ग व्यवस्था और कर्मकाण्ड के स्थान पर करूणा प्रधान मानवतावादी बौद्ध धर्म की स्थापना की। भारत में इस धर्म का प्रभाव 500 ई० से 1200 ई० तक रहा। महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम धर्म उपदेश वाराणसी से 8 किमी० दूर सारनाथ में दिया था। अपने चार शिष्यों से आगे बढाते हुए अपना उपदेश भारत के विभिन्न भागों में किया जो बौद्ध मठों एवं विहारों के रूप में जाना जाने लगा। बौद्ध भिक्षुओं द्वारा एक नई शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ जिस बौद्ध शिक्षा प्रणाली कहते है।

मौर्य काल में शिक्षण संस्थान

मौर्य और उत्तर मौर्य काल में भारतीय समाज में गहन परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही थी। शहरीकरण व्यापार के कारण व्यापारी मुख्य केन्द्र में थे। जिसके फलस्वरूप व्यापरियों के संघ शिक्षा प्रदान कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। ये

संघ तकनीकी शिक्षा के केन्द्रबिन्दु बन गए जो खनन, धातु विज्ञान, बढ़ई गिरि, कपड़ा बुनने, रंगाई करने की विद्या प्रदान करते थे। नगरीकरण के साथ निर्माण और वास्तु कला की नई तकनीकों का विकास हुआ। संघों ने समुद्र की यात्रा में नौवाहिनियों की सहायता के लिए नक्षत्रों की स्थिति का अध्ययन अर्थात खगोल विज्ञान को बढ़ावा दिया। चिकित्सीय ज्ञान आयुर्वेद के रूप में व्यवस्थित हुआ। वात पित्त और कफ भारतीय आयुर्विज्ञान के आधार बने । जड़ी-बूटी की चिकित्सीय ज्ञान और प्रभाव व दुष्प्रभाव की जानकारी और उनका उपयोग होने लगा। दवाइयों के लिए चरक और शल्य चिकित्सा के लिए सुश्रुत काफी प्रसिद्ध थे। चरक द्धारा लिखी चरक संहिता चिकित्सा विज्ञान का प्रमाणिक ग्रन्थ था। इसी काल में दार्शनिक एवं प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री चाणक्य द्धारा लिखी गयी पुस्तक अर्थशास्त्र थी जिसमें उल्लिखित पाठ्यक्रम में अधिकतर राजकुमारों की शिक्षा के विषय के बारे में हैं।

प्राचीन काल से उज्जयिनी शिक्षा का केन्द्र रहा। मौर्य काल में बौद्धों एवं जैनों के विशिष्ट प्रभाव से शिक्षा व्यवस्था विहारों एवं में मठो थी । उज्जयिनी में संदीपनि आश्रम में शिक्षा का केन्द्र रहा है यहाँ धर्मशास्त्रों से सम्बन्धित शिक्षा दी जाती थी कालान्तर में बौद्ध धर्म की शिक्षा के प्रतिलोगों का झुकाव हो गया है और उज्जयिनी बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया।

गुप्तकाल में शिक्षण संस्थान

गुप्तकाल (300-500 ई०) में शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। इस काल को भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में राज्य की ओर से शिक्षण संस्थाए नहीं थी। गुरु अपने शिष्यों को अपने निवास गृहों में व्यक्तिगत रूप से शिक्षण प्रदान करते थे। पाटलीपुत्र, मथुरा, उज्जैन, अयोध्या, बनारस, नासिक, और वल्लभी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

दक्षिण भारत में शिक्षा का प्रमुख केन्द्र काँची था जहाँ हिन्दू एवं बौद्ध दोनों धर्मो की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध विहार भी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र थे असंग, वसवन्धु, कुमारजीव जैसे प्रसिद्ध बौद्ध विद्धानों ने अपनी महान कृतियों इसी काल में की थी।

इस काल में शिक्षा, संस्कृति, दर्शन तथा विज्ञान जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। चन्द्रगुप्त के दरबार में महाकवि तथा नाटककार कालिदास, अमरसिंह कोशकार, धन्वंतरी (वैद्य), घटकपरि (कवि), क्षपशाक (खगोलज्ञ), शंक (वास्तुकार), वरहमिहिर (खगोलज्ञ), वररुचि (व्याकरण) तथा बेतालपट्ट जैसे विख्यात नवरत्न थे।

निष्कर्ष

गुप्तकाल में शिक्षा की स्थिति बेहतर थी वैदिक कालों से लेकर गुप्तकाल तक शिक्षा की स्थिति बेहतर थी। वैदिक कालों से लेकर गुप्तकाल तक शिक्षा की स्थितियों को देखने के बाद स्पष्ट है कि एक लम्बा सफर शैक्षणिक वातावरण का था। वैदिक काल में गुरुकुल की परम्परा से लेकर विश्वविद्यालय की स्थापना के भी प्रमाण की पुष्टि है। इस काल में संस्कृत भाषा और साहित्य का भी विकास हुआ। समुद्रगुप्त के समय में कांची शिक्षा केन्द्र को विकसित होने का अवसर मिला। यानि गुप्तकाल में शिक्षा उत्कृष्टता और प्रतिष्ठा की श्रेणी में था।

संदर्भ

1. गुप्ता, एस.पी. (1994): भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन्; इलाहाबाद

2. कुमार, कृष्ण (1999): प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धतिः सरस्वती सदन; नई दिल्ली

3. कुमार, कृष्ण (1999): प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धतिः सरस्वती सदन; नई दिल्ली

4. त्रिपाठी, लाल जी (2001): सांख्य दर्शन में शिक्षा की अवधारणा एवं उद्देश्य, भारतीय आधुनिक शिक्षा, शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्; नई दिल्ली, वर्ष-20, अंक-2

5. पाण्डेय राम शकल (2002): प्राचीन भारतीय में शिक्षा मनीषी, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

6. मिश्र, बाबू लाल (2003): महाभारत शिक्षा प्रणाली, प्रतिभा प्रकाशन; नई दिल्ली

7. सोनी, सुरेश (2004): हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्त्रोत, लोकहित प्रकाशन; लखनऊ

8. गणेश बी. सिंह (2006) जीवन कौशल शिक्षा, मुद्दों की प्रकृति और सिस्टम प्रावधान से उनका संबंध। शिक्षा अनुसंधान केंद्र, बुल्खु प्रकाशन, काठमांडू, नेपाल। पृ.-103। http://:www.cerid.org से लिया गया

9. दुबत के, पुनिया एस, गोयल आर (2007) किशोरियों में जीवन तनाव और मुकाबला शैलियों का एक अध्ययन। जर्नल ऑफ सोशल साइंस। खंड- 14 (2)। पृ.-191-194

10. शर्मा, डॉ. शंकर दयाल (2008): शिक्षा-दिशा और दृष्टिकोण, प्रवीण प्रकाशन; नई दिल्ली

11. जयंत अरावतिया (2009) स्कूलों को बच्चों को जीवन कौशल शिक्षा सिखाने के लिए जिम्मेदार होना चाहिए। पार्टनर, जेआरसी सॉल्यूशंस 01.06. 2009।

12. भरत श्रीकला, केवी किशोर कुमार (2010) स्कूलों में जीवन कौशल शिक्षा के साथ किशोरों को सशक्त बनाना - स्कूल मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम: क्या यह काम करता है? भारतीय मनोरोग पत्रिका। 2010 अक्टूबर दिसंबर 52-4: 344-349।

13. अपर्णा.एन और राखी.ए.एस. (2011) किशोरों के लिए जीवन कौशल शिक्षा: इसकी प्रासंगिकता और महत्व, जीईएसजे: शिक्षा विज्ञान और मनोविज्ञान। नंबर एम2(19), आईएसएसएन-1512-18013। यूजीसी रिसर्च स्कॉलर, शिक्षा विभाग, केरल विश्वविद्यालय।

14. बिंदु डेविड, शाइनी जॉन (2012) व्यावसायिक उच्चतर माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच जीवन कौशल और व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण, एडुट्रैक, अप्रैल 2011, खंड 10-संख्या-8। पृष्ठ-16-18।

15. सत्य मोहन, डोनाल्ड पेरस, 2012, "21वीं सदी के पाठ्यक्रम की आवश्यकता" एडुट्रैक, खंड 11- संख्या 9, पृष्ठ 41-47।

16. विनीता सिरोही, अविनाश कुमार सिंह (2014) कौशल संवर्धन के लिए अभिनव माध्यमिक शिक्षा (आईएसईएसई) पाठ्यक्रम द्वारा परिभाषित कौशल: दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया। (1 अगस्त, 2012), शिक्षा की नींव विभाग, नई दिल्ली, भारत

17. झा (डॉ.) नागेन्द्रः (2018) वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति, वैकदेश प्रकाशन, नई दिल्ली